THE TIMES OF INDIA

Date:28-02-20

Antidote to riots

Politics is taking a toll on policing. Delhi Police failures make a strong case for police reforms

TOI Editorial

That national security adviser Ajit Doval – whose brief is geopolitical issues and tackling external security threats – had to fill in the breach on domestic peacekeeping duties in riot-hit Delhi, and show to police and political authorities how their job should be done, poses grave questions about the Delhi Police, which reports to the Union home ministry. Likewise, the Delhi high court had to coach it in basic policing functions, when it asked why FIRs had not been registered over hate speeches made in the city this month leading up to the riots that have exploded since Sunday.

Failure to act on intelligence inputs, inaction despite thousands of calls on helplines, inadequate deployment in riot hit areas, and even instances of blatant collusion with rioters are among the charges levelled at Delhi Police. Disturbingly, they have recalled for many the pattern of police behaviour during Delhi's infamous 1984 riots which, ironically, BJP endlessly berates Congress about. Delhi's AAP government cannot absolve itself of all blame either. While it argues, correctly, that the city's police force reports not to it but to the Union home ministry, the chief minister still has considerable moral authority which has hardly been wielded adequately.

The nub of the problem, as the Supreme Court bench hearing the Shaheen Bagh case observed, is "lack of independence and professionalism of police to act as per law". It careens between inaction and disproportionate force depending on what it thinks will please its political masters. This hobbles both its independence and its professionalism. The problem is not confined to Delhi but recurs in states like UP, Bengal and elsewhere in India – essentially, India's police forces repeat a pattern inherited from the British Raj.

In 2006, Supreme Court made a powerful case for police reforms but little meaningful change has been achieved. It is now time to force the pace, and make police accountable to a legislative assembly committee in states and parliamentary committee in Delhi. This would ensure transparent and bipartisan oversight and free IPS officers from the grip of incompetent or politicking executives. Governing parties should not resist this necessary reform either. After all, look at what happened in Delhi: the enormous expenditure and effort undertaken to tell a certain positive story about India during US President Donald

Trump's visit, got overtaken by another story of the old India of communal riots and religious hatred rising again.

THE ECONOMIC TIMES

Date:28-02-20

Blue Dot network a worthy initiative

ET Editorial

Following President Donald Trump's high-profile State visit, India and the US need to formally launch project Blue Dot, the multi-stakeholder initiative to set up high quality infrastructure pegged to global standards, which already has the support of Japan and Australia. The Blue Dot Network (BDN), which came into being in November at the Indo-Pacific Business Forum in Bangkok, seeks to set up a globally recognised certification system for infrastructure projects to boost transparency and sustainability, and so is very much in our interest.

The BDN would reportedly bring together governments, the private sector and civil society to gainfully promote roads, ports, bridges et al, with a special emphasis on the Indo-Pacific region. The certifying process would lay particular stress on viable funding arrangements, environmental soundness and high labour standards, so as to shore up quality infrastructural investments. We, in India, probably have the highest number of infrastructure projects built in public-private partnership (PPP) mode in the last two decades.

And, yet, there is a huge and growing infrastructural deficit on the ground, and the vast bulk of projects that are essential requirement in, say, 2040 are not even on the drawing boards, leave alone being built. The way forward is to standardise big-ticket project implementation with transparent arm's-length finance and to carry out effective project delivery. We need to modernise infrastructure finance. Instead of reliance on opaque bank funding, we need to policy-induce an active and vibrant corporate bond market to rev up much-needed transparency in big-ticket projects. The way ahead is to set up special purpose vehicles to garner all and sundry clearances for specific investments, and then to invite bids for project implementation.

BDN projects would be able to raise debt, including from abroad, at fine rates. The bottomline is that BDN has the potential to make a world of difference, compared to China's wholly non-transparent, top-down Belt and Road Initiative with unsustainable levels of debt.

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date:28-02-20

फसल बीमा सुधार

संपादकीय

सरकार ने अपनी शीर्ष फसल बीमा योजना, प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना (पीएमएफबीवाई) में सुधार के उपायों का जो पैकेज घोषित किया है वह किसानों की मदद के बजाय शायद उनका नुकसान अधिक कर दे। इसमें दो राय नहीं कि पैकेज में ऐसे सकारात्मक तत्त्व शामिल हैं जो किसानों को लाभ पहुंचा सकते हैं लेकिन कई अन्य उपाय ऐसे भी हैं जो शायद बीमा कंपनियों अथवा राज्य सरकारों को ठीक न लगें। एक बेहतर बात यह है कि फसल बीमा को सभी किसानों के लिए स्वैच्छिक बना दिया गया है। फिलहाल बैंक ऋण लेने वाले सभी किसानों के लिए यह बीमा अनिवार्य है जबकि अन्य लोगों के लिए यह स्वैच्छिक है। इसका एक अन्य स्वागतयोग्य गुण है नुकसान के आकलन को तयशुदा में पूरा करने की प्रक्रिया को तार्किक बनाना। यदि राज्य सरकार फसल कटाई के अनुभव आधारित आंकड़े तय अवधि में देने में नाकाम रहती है तो बीमा कंपनियों को दावों का निस्तारण प्रारंभिक अनुमान के आधार पर करने की इजाजत देना बेहतर होगा। ऐसा करने से दावों के निस्तारण में होने वाली अनावश्यक देरी कम होगी। इस योजना के खिलाफ दावा निपटाने में होने वाली देरी भी प्रमुख शिकायत है।

बहरहाल, पीएमएफबीवाई का एक नकारात्मक पहलू ज्यादा चिंतित करने वाला है। नए डिजाइन में इस योजना के उस विशिष्ट गुण को मंद कर दिया गया है जो इसे अन्य कृषि बीमा योजनाओं से अलग करता है। इसमें वे तमाम जोखिम शामिल हैं जिनके बारे में सोचा जा सकता है। इसमें बुआई के पहले से फसल कटाई के बाद तक के सारे नुकसान शामिल थे। राज्यों को यह स्वायत्तता देने का भी प्रस्ताव है कि वे इस योजना के तहत कवर की जाने वाली बीमारियों का चयन करें। ऐसे में उन्हें यह इजाजत होगी कि वे उन किसानों को राहत प्रदान कर सकें जो सूखे के कारण फसल बुआई न कर सके हों या जिनकी खेतों में खड़ी फसल को नुकसान पहुंचा हो। इससे किसानों के लिए योजना की उपयोगिता कम होती है।

इसके अलावा नए मानक फसल बीमा प्रीमियम पर केंद्रीय सब्सिडी को असिंचित क्षेत्र में 30 फीसदी और सिंचित क्षेत्र में 25 फीसदी पर सीमित करते हैं। पूर्वोत्तर भारत के राज्यों के लिए यह 90 फीसदी होगा। केंद्रीय सब्सिडी और बीमा कंपनी द्वारा उल्लिखित वास्तविक प्रीमियम का अंतर पूरी तरह राज्य सरकार द्वारा चुकता किया जाएगा। इससे पहले कुल सब्सिडी केंद्र और राज्य सरकारें समान मात्रा में साझा करती थीं। ऐसे में केंद्र का वित्तीय बोझ कम होगा लेकिन राज्यों पर बोझ बढ़ेगा जो शायद उन्हें स्वीकार्य न हो। बीमा कंपनियां भी उतना ऊंचा प्रीमियम नहीं ले पाएंगी जितना कि वे अब तक वसूल रही थीं। बीमारियों की आशंका वाले शुष्क इलाकों में जहां प्राय: सूखा पड़ता रहता है वहां वे 75 प्रतिशत

तक प्रीमियम लेती रही हैं। चूंकि राज्य सरकारें इस उद्देश्य के लिए अधिक राशि देना नहीं चाहेंगी इसलिए बीमाकर्ता को या तो कम प्रीमियम लेना होगा या फिर वह योजना से बाहर हो जाएगी। दूसरे विकल्प की संभावना अधिक है क्योंकि चार निजी बीमा कंपनियां पहले ही पीएमएफबीवाई से बाहर निकल चुकी हैं। उनका कहना है कि कृषि बीमा मुनाफे का सौदा नहीं है।

इसी प्रकार तीन राज्यों ने पीएमएफबीवाई का क्रियान्वयन रोक दिया है। इसके अलावा भी कई राज्यों ने केंद्र को यह नोटिस दिया है कि वे भी ऐसा ही करेंगे। केंद्रीय कृषि मंत्रालय भी इस तथ्य से अनभिज्ञ नहीं नजर आ रहा है। उसने पहले ही यह घोषणा कर दी है कि वह राज्यों के लिए विशेष तौर पर तैयार वैकल्पिक कार्यक्रम पेश करेगी। अब तक जितने भी फसल बीमा मॉडल आजमाए गए हैं उनके कमजोर ट्रैक रिकॉर्ड को देखते हुए गैर बीमा आधारित जोखिम बचाव उपायों की आवश्यकता है।

Date:28-02-20

ब्रिटेन के एनआईसी जैसे निकाय की जरूरत

भारतीय ढांचागत क्षेत्र में नई ऊर्जा भरने के लिए ब्रिटेन के एनआईसी जैसे नियामकीय संस्थान के गठन की जरूरत है। इसकी अहमियत को रेखांकित कर रहे हैं विनायक चटर्जी

विनायक चटर्जी , (लेखक ढांचागत परामर्श फर्म फीडबैक इन्फ्रा के चेयरमैन हैं)

तत्कालीन वित्त मंत्री अरुण जेटली ने 10 जुलाई, 2014 को संसद में अपना पहला बजट भाषण देते हुए खंड पांच के पैराग्राफ 110 में ढांचागत क्षेत्र का जिक्र किया था। जेटली ने कहा था, 'भारत दुनिया में सार्वजनिक-निजी भागीदारी (पीपीपी) का सबसे बड़ा बाजार बनकर उभरा है। इस समय 900 से अधिक परियोजनाएं विकास के विभिन्न चरणों में हैं। पीपीपी के जरिये हवाईअड्डों, बंदरगाहों और राजमार्गों के कुछ शानदार ढांचे तैयार किए गए हैं। लेकिन हमने पीपीपी प्रारूप में कुछ खामियां देखी हैं, अनुबंध प्रावधानों में कठोरता, अनुबंध बनाने के परिष्कृत एवं उन्नत मॉडल तैयार करने और विवाद निपटान की त्वरित व्यवस्था के विकास की जरूरत को महसूस किया है। भारत में पीपीपी करारों को मुख्यधारा में लाने के लिए 500 करोड़ रुपये के कोष से 3पी इंडिया नाम का संस्थागत आधार तैयार किया जाएगा।'

26 मई, 2015 :

राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (राजग) सरकार ने पूर्व वित्त सचिव विजय केलकर की अध्यक्षता में एक नौ सदस्यीय समिति का गठन किया। इस समिति ने 19 नवंबर, 2015 को 'ढांचागत विकास के पीपीपी मॉडल की समीक्षा एवं पुनर्जीवन' पर केंद्रित अपनी रिपोर्ट पेश की। समिति ने 3पी इंडिया के गठन की पुरजोर वकालत करते हुए कहा कि यह संस्था पीपीपी में उत्कृष्टता केंद्र के तौर पर काम करने के अलावा क्षमता निर्माण से जुड़े शोध, समीक्षा एवं गतिविधियों का खाका पेश करेगी। केलकर समिति ने पीपीपी ढांचे के तीन प्रमुख स्तंभों- शासन, संस्थान और क्षमता को और मजबूत

करने की जरूरत बताई ताकि क्रियान्वयन के नए दौर के लिए मजबूत ढांचा खड़ा किया जा सके।

31 दिसंबर, 2019 :

वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण ने 2019-25 के लिए राष्ट्रीय ढांचा पाइपलाइन (एनआईपी) पर गठित कार्यबल की रिपोर्ट जारी की। उन्होंने कहा, 'वर्ष 2024-25 तक पांच लाख करोड़ रुपये का जीडीपी लक्ष्य हासिल करने के लिए भारत को इस अवधि में ढांचागत क्षेत्र पर करीब 1.4 लाख करोड़ रुपये खर्च करने की जरूरत है। चुनौती ढांचागत निवेश पर सालाना खर्च बढ़ाने की है ताकि ढांचे का अभाव भारतीय अर्थव्यवस्था की वृद्धि पर बाध्यकारी अवरोध न बने।' काफी पहले यह माना जा चुका है कि आर्थिक वृद्धि के प्रमुख वाहक के तौर पर ढांचागत एजेंडे को जोर-शोर से बढ़ाया जाए। एक दूरदृष्टि वाली एक परियोजना-पाइपलाइन की रूपरेखा और उसका वित्तपोषण करना ही काफी नहीं है, जरूरी संस्थागत क्षमता भी होनी चाहिए। ब्रिटेन में अक्टूबर 2015 में गठित राष्ट्रीय ढांचागत आयोग (एनआईसी) भी भारत के लिए कुछ सबक समेटे हुए है।

ब्रिटेन के एनआईसी का चार्टर क्या है?

ब्रिटेन के वित्त विभाग के मातहत एक स्वतंत्र एजेंसी के तौर पर संचालित होने वाली एनआईसी देश की दीर्घावधि ढांचागत प्राथमिकताओं पर केंद्रित थिंक-टैंक के तौर पर काम करती है। यह ढांचागत क्षेत्र से जुड़ी चुनौतियों और रणनीति पर सरकार को सलाह एवं अनुशंसा भी देती है। इसका अपना एक सचिवालय है जिसमें करीब 50 कर्मचारियों का नेतृत्व मुख्य कार्याधिकारी (सीईओ) करता है। एनआईसी लंबी अवधि का नजरिया लेकर चलता है। यह हरेक संसद का कार्यकाल खत्म होने पर राष्ट्रीय ढांचागत आकलन प्रकाशित करता है और देश को 30 वर्ष तक की अवधि में पडने़ वाली ढांचागत जरूरतें तय करने के साथ ही इन जरूरतों को पूरा करने के लिए उठाए जाने वाले कदमों की अनुशंसा भी सरकार को करता है।

लेकिन यह आयोग तात्कालिक जरूरतों पर भी नजर रखता है। विशुद्ध रूप से दीर्घकालिक नजरिया रखने में जोखिम यह है कि अगले 30 साल नहीं, बल्कि पांच साल को केंद्र में रखने वाली सरकार इसके सुझावों को नजरअंदाज ही कर दे। इसी वजह से आयोग तात्कालिक रूप से अहम ढांचागत जरूरतों पर क्षेत्र-केंद्रित रिपोर्ट जारी करता है। यह एक संकीर्ण क्षेत्र केंद्रण से परे है। मसलन, परिवहन क्षेत्र में यह बहुआयामी संदर्भों में समाधानों का परीक्षण करता है जिसमें सड़क, रेल और मेट्रो परिवहन के बीच अंतर्निर्भरता पर ध्यान दिया जाता है।

एनआईसी चार्टर सरकार के साथ संबंध, अधिकार और उत्तरदायित्व स्पष्ट करता है। सरकार की यह जिम्मेदारी है कि वह एनआईसी के दिए सुझावों पर कदम उठाए और कारण सहित यह बताए कि किस सुझाव को स्वीकार करना है और किसे खारिज? एनआईसी इन सुझावों पर प्रगति की निगरानी करता है। यह एक वार्षिक निगरानी रिपोर्ट प्रकाशित करता है जो इसके पुराने सुझावों पर हुई सरकारी प्रगति पर नजर रखती है। इस तरह से यह आकांक्षाओं एवं वास्तविक उपलब्धियों के बीच के फासले पर एक वस्तुस्थिति परीक्षण के तौर पर काम करता है। यह दूसरे संस्थानों के साथ पुल के तौर पर भी काम करता है। एनआईसी के चार्टर में कहा गया है कि इसे नीति-निर्माताओं, ढांचागत विशेषज्ञों और क्षेत्र नियामकों जैसे दूसरे हितधारकों के संपर्क में भी रहना चाहिए। यह अहम है क्योंकि भारत में एनआईसी से मिलते-जुलते संस्थानों के

साथ सबसे बड़ी समस्या यह है कि मंत्रालय के कर्ताधर्ता अपनी जमीन बचाए रखने के लिए बाहरी संस्थानों से मिले सुझावों को स्वीकार करने में आनाकानी करते हैं।

एनआईसी को आम जनता से संवाद रखना होगा। इसका चार्टर के मुताबिक आयोग को अपनी रिपोर्ट तैयार करते समय आम लोगों से संपर्क करना होगा। जनता के ही सबसे बड़ा उपभोक्ता और अधिकांश ढांचागत परियोजनाओं का उपयोगकर्ता होने से यह कार्य सहमति-निर्माण के लिए बेहद अहम है। एनआईसी वित्तीय रूप से स्वतंत्र संस्था है। भले ही यह तकनीकी तौर पर वित्त विभाग के अधीन है लेकिन सरकार के साथ 'बहुवर्षीय वित्तीय समाधान' के जरिये इसे फंड मिलता है। ऐसा होने से आयोग को हर साल बजट में अपने लिए प्रावधान की फिक्र करने के बजाय एक साथ कई वर्षों के लिए फंड मिल जाता है।

इसी तरह इसकी परिचालनात्मक स्वतंत्रता का मुद्दा है। इसका चार्टर यह स्पष्ट करता है कि 'इसे स्वतंत्र ढंग से कार्यक्रम बनाने, कार्य-प्रणाली और अनुशंसाएं करने का पूर्ण विवेकाधिकार है। इसके अलावा अपनी रिपोर्ट एवं सार्वजनिक बयानों की सामग्री में भी उसे स्वतंत्रता होती है।' एनआईसी को प्रतिभाशाली लोगों को साथ जोडऩे की क्षमता है। भारतीय संस्थानों की एक कमजोरी यह रही है कि वे सेवानिवृत्त अफसरशाहों के लिए शरणगाह बनकर रह गए हैं। एनआईसी न केवल लोकसेवकों बल्कि ढांचागत क्षेत्र, स्थानीय सरकारों और नियामकों से भी पेशेवरों को अपने साथ जोड़ता है। भारतीय ढांचागत क्षेत्र में नई ऊर्जा भरना ब्रिटेन के एनआईसी जैसे संस्थान के गठन पर काफी हद तक निर्भर करता है। ब्रिटेन का एनआईसी जिन सिद्धांतों पर बना था वह इसकी राह दिखाता है।

दैनिक भास्कर

Date:28-02-20

अशांति के खिलाफ ईमानदार और सख्त 'राजदंड' जरूरी

संपादकीय

पूरे देश में दो संप्रदायों के बीच खाई लगातार बढ़ती जा रही है। देश की राजधानी जल रही है, लगभग तीन दर्जन लोग मारे गए हैं, जिसमें एक पुलिस कांस्टेबल भी है। पिछले कुछ वर्षों में देश में सांप्रदायिक तनाव बढ़ा है। गृह राज्यमंत्री का कहना है कि अमेरिकी राष्ट्रपति के दौरे के दौरान भड़की दिल्ली हिंसा की घटनाएं किसी साजिश की बू देती हैं। साजिश कौन कर रहा है, अगर कर रहा है तो कहने वाले मंत्री, जो स्वयं इसे रोकने के जिम्मेदार हैं, क्या कर रहे हैं? ऐसे इशारों में बात करके क्या साजिशकर्ताओं को रोक सकेंगे? यही सब तो वर्षों से किया जा रहा है। क्या सत्ता का काम इशारों में बात करना है? अच्छा तो होता जब उसी मीडिया के सामने ये मंत्री साजिशकर्ताओं को खड़ा करते और अकाट्य साक्ष्य के साथ उन्हें बेनकाब करते। जब एक मंत्री बयान देता है कि 'तुम्हें पाकिस्तान दे दिया, अब तुम पाकिस्तान चले जाओ, हमें चैन से रहने दो', तो क्यों नहीं उसी दिन उसे पद से हटाकर मुकदमा कायम किया जाता? उसने तो संविधान में निष्ठा की कसम खाई थी और उसी संविधान की प्रस्तावना में 'हम भारत के लोग' लिखा था न कि 'हमारा हिंदुस्तान,

तुम्हारा पाकिस्तान'। राजसत्ता के प्रतिनिधियों की तरफ से इन बयानों के बाद लम्पट वर्ग का हौसला बढ़ने लगता है और दूसरी ओर संख्यात्मक रूप से कमजोर वर्ग में आत्मसुरक्षा की आक्रामकता पैदा हो जाती है। फिर अगर मंच से कोई बहका नेता '120 करोड़ पर 15 करोड़ भारी' कहता है तो उसे घसीटकर पूरे समाज को बताना होता है कि भारी लोगों की संख्या नहीं, बल्कि कानून और पुलिस है। लेकिन इसकी शर्त यह है कि सरकार को यह ताकत तब भी दिखानी होती है जब चुनाव के दौरान केंद्र का मंत्री 'देश के गद्दारों को' कहकर भीड़ को 'गोली मारो सा... को' कहलवाता है। आज जरूरत है कि देश का मुखिया वस्तु स्थिति समझे और एक मजबूत, निष्पक्ष राजदंड का प्रयोग हर उस शख्स के खिलाफ करे जो भावनाओं को भड़काने के धंधे में यह सोचकर लगा है कि इससे उसका राजनीतिक अस्तित्व पुख्ता होगा। भारत को सीरिया बनने से बचाने के लिए एक मजबूत राज्य का संदेश देना जरूरी है।

नईदुनिया

Date:28-02-20

अब तो न हो पुलिस सुधारों की अनदेखी

विक्रम सिंह , (लेखक उप्र पुलिस के डीजीपी रहे हैं)

दिल्ली में भड़की भीषण हिंसा के बाद दिल्ली पुलिस एक फिर चर्चा के केंद्र में है। इससे पहले गत वर्ष नवंबर में दिल्ली की तीस हजारी अदालत में वकीलों के साथ संघर्ष की विचलित करने वाली तस्वीरें पूरे देश ने देखी थीं। अधिवक्ताओं के दुर्व्यवहार से पुलिस का मनोबल टूट गया था। इसके बाद शाहीन बाग के धरने जैसी समस्या ने दिल्ली में दस्तक दी, जिसका आज तक समाधान नहीं मिल सका। इसी दौरान दिल्ली पुलिस पर जामिया मिल्लिया इस्लामिया में छात्रों पर अत्यधिक बल प्रयोग के आरोप लगे। मानो इतना ही काफी नहीं था कि जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में कार्रवाई को लेकर दिल्ली पुलिस पर आरोप लगे कि उसकी ढिलाई से हमलावर भागने में कामयाब रहे।

दिल्ली में बीते पांच दिनों के घटनाक्रम से स्पष्ट है कि कई महत्वपूर्ण सूचनाएं प्राप्त होने के बावजूद दिल्ली पुलिस ने वैसी वांछित कार्रवाई नहीं की, जैसी एक पेशेवर एवं दक्ष पुलिस बल से अपेक्षा की जाती है। इसमें एक पहलू यह भी बताया जा रहा है कि अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप के दौरे के मद्देनजर पुलिस के समक्ष दुविधा थी कि वह बल प्रयोग करे अथवा नहीं? यह असमंजस की स्थिति अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण रही, क्योंकि निहित स्वार्थी तत्व यही चाहते थे कि राष्ट्रपति ट्रंप के समक्ष किसी भी तरह यही सिद्ध किया जाए कि नागरिकता संशोधन कानून यानी सीएए एकतरफा और मुस्लिम विरोधी है। इससे यह संदेश जाएगा कि जब भारत अपनी राजधानी में ही विधि व्यवस्था पर नियंत्रण नहीं रख सकता तो पूरे देश पर उसका क्या नियंत्रण होगा? दिल्ली हिंसा के मामले में एक बार फिर पॉपुलर फ्रंट ऑफ इंडिया यानी पीएफआई के संबंध में यह बात सामने आई कि उसके द्वारा 120 करोड़ रुपये विध्वंसक कार्रवाई हेतु इकट्ठा किए गए और उन्हें अन्य तत्वों तक पहुंचाया गया। यह भी आरोप है कि उसका एक प्रमुख कार्यालय शाहीन बाग के समीप है और पर्दे के पीछे से वही शरारतपूर्ण कार्रवाई कर रहा है। इस धरने से आम लोगों को परेशानी हो रही है और यही कारण है कि सर्वोच्च न्यायालय और दिल्ली उच्च न्यायालय ने इस पर चिंता जताई।

हैरानी है कि उनके हस्तक्षेप के उपरांत भी कोई प्रभावी कार्रवाई दृष्टिगोचर नहीं हो रही है। सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट कहा कि सार्वजनिक स्थानों पर धरना प्रदर्शन नहीं होना चाहिए। इसके उपरांत कुछ नेताओं ने भड़काऊ बयान दिए। उनके ऊपर कार्रवाई नहीं हुई। दिल्ली उच्च न्यायालय ने हस्तक्षेप करते हुए कहा कि प्राथमिकी यानी एफआईआर दर्ज होनी चाहिए।पूर्वी दिल्ली का जो इलाका हिंसा की सबसे अधिक चपेट में आया, वह वही क्षेत्र है जहां उसी दिन हिंसक घटनाएं शुरू हो गई थीं, जिस दिन अमेरिकी राष्ट्रपति ट्रंप दिल्ली आए थे। यह हिंसा दूसरे दिन भी जारी रही। यह हिंसा कितनी भयावह थी, इसका अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि इसमें 30 से अधिक लोगों की मौत हो गई। इनमें हेड कांस्टेबल रतन लाल और खुफिया ब्यूरो यानी आईबी के अंकित शर्मा शहीद हो गए। अंकित शर्मा की जिस बर्बरता के साथ हत्या की गई, उससे यह स्पष्ट है कि एक सुनियोजित षड्यंत्र के तहत आपराधिक तत्वों ने इस वारदात को अंजाम दिया।

पूरे घटनाक्रम की यदि गहराई से समीक्षा की जाए तो कुछ तथ्य स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं। पुख्ता सूचनाएं प्राप्त होने के बावजूद वांछित पुलिस कार्रवाई का न होना शर्मनाक होने के साथ-साथ अत्यंत आपत्तिजनक है। इन गंभीर परिस्थितियों में तत्काल प्रभाव से धारा 144 लागू की जानी चाहिए थी। प्रभावी निगरानी के साथ-साथ वांछित और सक्रिय अपराधियों की गिरफ्तारी पहले चरण में ही हो जानी चाहिए थी। अभियान चलाकर जायज और नाजायज हथियारों को जब्त किया जाना सुनिश्चित होना चाहिए था। अवांछित, सांप्रदायिक और आपराधिक तत्वों के विरुद्ध सीआरपीसी के तहत निरोधात्मक कार्रवाई की जानी चाहिए थी। प्रभावित क्षेत्र में गश्त, नाकाबंदी, निगरानी, वॉच टावर और हाई रेजोल्यूशन सीसीटीवी कैमरे लगाए जाने चाहिए थे। जिन लोगों ने भड़काऊ बयान दिए थे, वे किसी भी दल, संप्रदाय और जाति के हों अथवा किसी भी पद पर हों, उनके विरुद्ध समुचित वैधानिक कार्रवाई सुनिश्चित होनी चाहिए थी।

कार्रवाई तो छोड़ दें, जो पुलिस का मौलिक कार्य है रोकना, टोकना और पूछना, वह भी नहीं हो सका। इसके भयानक परिणाम हुए। अप्रत्याशित आगजनी, लूटपाट और गंभीर सांप्रदायिक तनाव उत्पन्न् हो गया। साफ है कि स्थानीय तौर पर आंतरिक सुरक्षा योजना के क्रियान्वयन की जो व्यवस्था होती है, वह नहीं हो पाई, क्योंकि शायद पहले कोई पूर्वाभ्यास नहीं हुआ। यह मानने के पर्याप्त कारण हैं कि अपराध एवं अपराधियों और स्थानीय भूगोल की अनभिज्ञता ने पुलिस का कार्य अत्यधिक दुष्कर बना दिया। परिस्थितियों से स्पष्ट है कि अपराधियों का मनोबल बहुत ऊंचा और पुलिस का बल, मनोबल उनके समक्ष वांछित स्तर का नहीं था। लगता है कि जनसंपर्क के संबंध में जो कार्रवाई होनी चाहिए थी, वह भी नहीं की गई। इससे विश्वसनीयता का सेतु नहीं बन पाया और पुलिस के प्रयास निष्प्रभावी साबित हुए।

यह संतोष का विषय है कि राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार अजीत डोभाल ने प्रभावित क्षेत्रों का व्यापक भ्रमण किया, परंतु यह कार्य पुलिस के सभी स्तर के अधिकारियों से लेकर पुलिस आयुक्त का था कि वे जनता से संपर्क बनाए रखें, व्यापक भ्रमण करें, मोहल्ला सुरक्षा समितियों का गठन कर उन्हें सक्रिय करें, जिससे विषम परिस्थितियों में अपने संपर्क सूत्रों के माध्यम से जनता में सुरक्षा और आत्मविश्वास पैदा कर सकें, जिसका कि नितांत अभाव दिखा। सर्वोच्च न्यायालय ने अत्यंत तीखी टिप्पणी करते हुए दिल्ली पुलिस की पेशेवर दक्षता पर प्रश्नचिह्न लगाए। सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी कहा कि सार्वजनिक स्थल पर धरने प्रदर्शन का कोई औचित्य नहीं है, फिर भी धरना जारी है। आखिर क्यों? कल्पना करें कि यदि यही परिस्थिति अमेरिका और ब्रिटेन में बनती तो क्या होता?

यह सर्वविदित है कि प्रकाश सिंह बनाम भारत सरकार मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने पुलिस सुधार हेतु महत्वपूर्ण सात बिंदुओं पर कार्रवाई हेतु निर्देश जारी किए थे। यह देश का और दिल्ली का दुर्भाग्य है कि जो सुधार 2006 में ही लागू हो

जाने चाहिए थे, वे आज तक लागू नहीं हो पाए और न ही भविष्य में उनके लागू होने की कोई संभावना है। आखिर राजनीति से प्रभावित और सुधार से वंचित एक पुलिस बल कारगर कैसे हो सकता है? यह कोई विवाद का प्रश्न नहीं है कि अपराधी किसी जाति, संप्रदाय या दल का हो, उसके खिलाफ वैधानिक कार्रवाई निर्भीक तरीके से होनी चाहिए। भविष्य में यदि हम इस प्रकार की घटनाओं की पुनरावृत्ति नहीं देखना चाहते तो राष्ट्र को निर्णय लेना होगा कि पुलिस सुधार शीघ्र सुनिश्चित किए जाएं, क्योंकि अब यह विकल्प नहीं, एक अनिवार्यता है।

Live हिन्दुस्तान .com

Date:28-02-20

भारत कोरोना मुक्त, लेकिन खतरा अभी टला नहीं

कोविड-19 के नए मामले बताते हैं कि स्वस्थ दिखने वाला संक्रमित व्यक्ति भी दूसरों को यह वायरस सौंप सकता है।

संचिता शर्मा

नोवेल कोरोना वायरस (कोविड-19) के केंद्र वुहान (चीन) से भारत लौटे तीन संक्रमित छात्रों में से आखिरी को भी अस्पताल से छुट्टी मिल गई। केरल का यह बाशिंदा बीते शुक्रवार को अपने घर लौट आया। विश्व स्वास्थ्य संगठन का भी कहना है कि चीन से मिल रहे आंकड़ों के मुताबिक वहां नए मामलों में कमी देखी जा रही है। बावजूद इसके इस महामारी के फैलने का खतरा बना हुआ है। आखिर क्यों?

दरअसल, चीन के वैज्ञानिकों ने पिछले सप्ताह बताया कि वुहान की एक 20 वर्षीया युवती ने उत्तरी हिस्से यांग तक 675 किलोमीटर की यात्रा की और अपने पांच रिश्तेदारों को संक्रमित किया, जबकि यात्रा के दौरान युवती में संक्रमण का कोई लक्षण नहीं दिखा था। जब उनके रिश्तेदारों को कोविड-19 निमोनिया हुआ, तब उस युवती की जांच-पड़ताल की गई, मगर वायरस की शुरुआती रिपोर्ट निगेटिव आई। हेनान प्रांत (चीन) के झेंगझाऊ यूनिवर्सिटी पीपुल्स हॉस्पिटल के डॉक्टर कहते हैं कि छाती के सीटी स्कैन की सामान्य रिपोर्ट आने और बुखार, पेट व श्वसन संबंधी अन्य लक्षण (जैसे सर्दी या गले में खराश) जाहिर न होने के बाद भी जब आगे जांच की गई, तो उसमें कोविड-19 की पुष्टि हुई।

सार्वजनिक स्वास्थ्य के लिहाज से नई महामारियों के तमाम मामले चिंतनीय होते हैं, क्योंकि इंसानों में उनसे लड़ने का प्रतिरक्षा तंत्र मौजूद नहीं होता। भले ही सामान्य जुकाम के एक तिहाई मामलों की वजह कोरोना परिवार के वायरस होते हैं, मगर इसी समूह के सार्स (सिवियर एक्यूट रेस्पीरेटरी सिंड्रोम) और मर्स (मिडिल ईस्ट रेस्पीरेटरी सिंड्रोम) गंभीर बीमारी के भी कारण बनते हैं, जिनमें मृत्यु-दर क्रमश: 10 फीसदी (2003 में) और 30 फीसदी (2012 में) रही है।

नेचर पत्रिका में छपी रिपोर्ट में इसके जीन-संबंधी विश्लेषण बताते हैं कि कोविड-19 के 79.5 फीसदी जीन सार्स कोरोना वायरस से मिलते हैं और दोनों में समान ग्राही कोशिका भी हैं। नया वायरस चमगादड़ में मौजूद कोरोना वायरस से 96.2

फीसदी तक समान है, मगर चमगादड़ से मनुष्य में यह किस तरह आया, इसका पता अब तक नहीं चल पाया है। यह बात दीगर है कि सार्स सिविट बिल्ली से आया था, जबकि मर्स ऊंट से।

हालांकि सार्स या मर्स की तुलना में कोविड-19 अधिक तेजी से फैलता है और यही वजह है कि इस पर नियंत्रण मुश्किल जान पड़ रहा है। कोविड-19 के नए मामले बताते हैं कि स्वस्थ दिखने वाला संक्रमित व्यक्ति भी दूसरों को यह वायरस सौंप सकता है। अभी तक यही पता चला है कि खांसने व छींकने के कारण मुंह से निकली छोटी जल-बूंदों के संपर्क में आने और संक्रमित व्यक्ति को छूने या उसके द्वारा संक्रमित किसी वस्तु को स्पर्श करने के बाद बिना हाथ धोए अपना मुंह, नाक या आंख छूने से यह संक्रमण फैलता है। कभी-कभी मल द्वारा भी इसका प्रसार होता है।

किसी इंसान के संक्रमित होने और उसमें इसके लक्षण उभरने में 5.2 दिन का समय लगता है, जिसकी आखिरी मियाद 14 दिन होती है। इसी कारण वायरस के संपर्क में आने वाले लोगों को कम से कम दो हफ्तों तक अलग रखा जाता है। चूंकि नए मामलों में लक्षण खुले रूप में न दिखने के बावजूद संक्रमित होने और दूसरों में रोग बांटने की बात सामने आई है, इसलिए संक्रमण के मूल स्रोत की पहचान करना कठिन होता जा रहा है। चीन से बाहर करीब 12,000 लोग इससे संक्रमित हैं, लेकिन संक्रमित व्यक्ति के नजदीकी लोगों और उनके करीबियों में संक्रमण की दर लगातार बढ़ रही है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन ने चेतावनी दी है कि चीन में नए मामले जरूर कम आने लगे हैं, लेकिन स्पष्ट नहीं है कि यह महामारी किस राह आगे बढ़ेगी। 2003 में फैली आखिरी महामारी सार्स के बाद हवाई यात्रियों की संख्या में 10 गुना वृद्धि हुई है, लिहाजा देशों को संक्रमण की पहचान करने और उसकी रोकथाम के लिए सतर्क रहना होगा। बड़ी धनराशि खर्च करने के वायदे के बावजूद 18 महीने से पहले इसका टीका बनना मुश्किल है। लिहाजा जब तक इस वायरस के व्यवहार को पूरी तरह नहीं समझा जाता, तब तक निगरानी, सहायक उपचार, सूचनाओं का पारदर्शी आदान-प्रदान, रोगियों को अलग-थलग रखना और वैश्विक साझीदारी जैसे पुराने उपाय ही इस नए संक्रमण के खिलाफ हमारा कवच हैं।

जनसत्ता

Date:27-02-20

खुशी की खोज

संपादकीय

ऐसा लगता है कि हमारी समूची जिंदगी गुजरती तो है हर पल खुशी की खोज में, लेकिन हमने अपने आसपास ऐसा संजाल खड़ा कर लिया है कि उसमें अपनी ही यह मर्जी हमें खास लगती है या कई बार असहज लगने लगती है। सहज क्या है? सहज उसे मान लिया जाता है, जो सब कुछ सामाजिक मानदंडों के तहत चलता रहता है। इसे शायद एक दर्ज करने वाली खास घटना के तौर पर देखा जाएगा कि दुनिया की सबसे बड़ी मानी जाने वाली ताकत अमेरिका की प्रथम महिला मेलानिया ट्रंप ने अपने दौरे में राजधानी के स्कूल को और उसमें भी उस गतिविधि देखना चुना, जो आजकल सुर्खियों में है। दरअसल, दिल्ली के एक सर्वोदय स्कूल में उनके दौरे का सबसे अहम केंद्र ही यह देखना और जानना था

कि वहां की खुशहाली की कक्षा में किसी तरह खुशियां खिलखिलाती हैं! तो हुआ यह कि मेलानिया जिस उम्मीद से उस स्कूल में बच्चों के बीच गईं, उसमें उन्हें कुछ ज्यादा ही मिला। वहां बच्चों के लिए वे किसी परीकथा की नायिका सरीखी थीं, तो खुद मेलानिया को मासूमों की खुशहाली के बीच एक खास खुशी का एहसास मिला। दरअसल, स्कूली पाठ्यक्रमों में अब तक आमतौर पर कक्षा की किताबें ही शामिल रही हैं और वही बच्चों या विद्यार्थियों की स्कूली गतिविधियों का मुख्य हिस्सा माना जाता रहा है। इसके अलावा, खेल-कूद को भी जगह मिल जाती है। लेकिन शायद ही कहीं इस बात की जरूरत महसूस की गई कि स्कूल में बच्चों के सिर पर पढ़ाई के बोझ से राहत और फिर खुशी को सीधे महसूस कराए जाने को कक्षा की गतिविधियों का हिस्सा बनाया जाए। इस लिहाज से देखें तो दिल्ली के स्कूलों में चल रहा 'हैप्पीनेस क्लास' एक नायाब प्रयोग है।

अब तक स्कूली पाठ्यक्रम में किताबों, कक्षा और परीक्षा के चक्र ने बच्चों के व्यक्तित्व निर्माण के सामने कैसी चुनौतियां खड़ी की हैं, यह हम सबके सामने है। खासतौर पर परीक्षा और नतीजों के तनाव में घुलते कितने ही बच्चों के व्यक्तित्व का विकास अधूरा रह जाता है तो कई बार खुदकुशी तक की खबरें आ जाती हैं। इसलिए स्कूल की कक्षा में ही अगर व्यावहारिक रूप से खुशहाली के एहसास को एक जरूरी हिस्सा बनाया जाता है तो यह बेशक खास है। वैसे भी, रोजमर्रा की जिंदगी जीते हुए आखिर वह कौन-सा भाव है, जिसकी खोज में हम आमतौर पर हर वक्त होते हैं? जज्बातों के लिहाज से हमारे हर काम, जिंदगी की हर गतिविधि की मंजिल क्या होती है? जाहिर है, अमूमन सभी कुछ करते हुए हमारी मंशा का आखिरी बिंदु यही होता है कि हम जो कर रहे हैं, उससे हमें थोड़ी खुशी मिले। लेकिन क्या हमारी सामाजिक से लेकर राजनीतिक व्यवस्था में अपने मन की खुशी की खोज की आजादी हासिल करना इतना ही आसान है?

ऐसा लगता है कि हमारी समूची जिंदगी गुजरती तो है हर पल खुशी की खोज में, लेकिन हमने अपने आसपास ऐसा संजाल खड़ा कर लिया है कि उसमें अपनी ही यह मर्जी हमें खास लगती है या कई बार असहज लगने लगती है। सहज क्या है? सहज उसे मान लिया जाता है, जो सब कुछ सामाजिक मानदंडों के तहत चलता रहता है। पहले से कायम परंपराओं के मुताबिक जीना-मरना, हंसना-रोना, पढ़ना-लिखना और अपना हर सामाजिक बर्ताव तय करना सहज माना जाता है और अगर कोई इंसान अपनी इच्छा से खुशी चुनने की कोशिश करता है तो उसके लिए उसे जद्दोजहद करनी पड़ती है, बल्कि कई बार असामान्य हालात से गुजरना पड़ता है। हालांकि हम जिस खुशी की खोज में लगातार खुद को मसरूफ रखते हैं, उसकी कई-कई परतें हो सकती हैं। लेकिन हमारी सामाजिक व्यवस्था फिलहाल कोई ऐसा ढांचा नहीं तैयार कर सकी है कि हमारी खुशी निर्बाध हो। इसलिए दिल्ली के स्कूली बच्चों के बीच अगर खुशहाली की खोज की कोशिश देखी जा रही है तो उम्मीद की जानी चाहिए कि इसका असर हमारी भावी पीढ़ियों के मानस और फिर आपसी सद्भाव और प्रेम के भाव से लैस एक बेहतर इंसानी समाज की आबोहवा तैयार करेगा।

राष्ट्रीय सहारा

Date:27-02-20

पुलिस पर सवाल?

आमोद कंठ

दिल्ली में आज जो कुछ हो रहा है, उसका 84 के दंगों से मुकाबला करना ठीक नहीं होगा जैसा कि कुछ लोग कर रहे हैं। दोनों के हालात में बहुत अंतर है। दिल्ली में तब की पुलिस और आज की पुलिस में बहुत अंतर है। आप जानते हैं कि आज दिल्ली पुलिस विश्व के बड़े शहरों में सबसे बड़ी फोर्स है, जिसमें एक लाख के करीब लोग कार्यरत हैं, जिनके पास आधुनिकतम सुविधाएं उपलब्ध हैं। कमी पुलिस की नीयत पर भी नहीं, बल्कि पुलिस के नेतृत्व में रही है।

पिछले दो दिनों की घटनाएं अचानक नहीं हुई हैं। इनका माहौल बहुत दिनों से बन रहा था। जब सीएए का विरोध करने के लिए शाहीन बाग पर धरना बैठा तभी पुलिस को उन्हें उठाने की कोशिश करनी चाहिए थी। क्या हुआ अगर महिलाएं धरने पर थीं? क्या दिल्ली पुलिस में महिला पुलिस नहीं है? किसी शहर में एक सड़क को इतने दिनों तक कैसे रोका सकता है? अगर यह धरना पहले ही उठ जाता तो उसके विरोध में धरने की जरूरत ही नहीं पड़ती। लोगों का पुलिस व्यवस्था और कानून में विश्वास दोबारा स्थापित करने के लिए इस सारे फसाद की न्यायिक जांच होनी चाहिए नहीं तो आगे आने वाले लोगों को भी कार्रवाई करने की हिम्मत नहीं पड़ेगी। इस बार मुझे और बहुत लोगों को ऐसा लगा कि हमारे पुलिस कमिशनर को जब-जब जहां-जहां होना चाहिए था वो वहां नहीं दिखे। दिल्ली का पुलिस कमिश्नर कोई मामूली हस्ती नहीं है। उन्हें हमेशा दिखना चाहिए। उनकी बातों से लगना चाहिए कि उनका विजन क्या है। इस पूरे विवाद में अमूल्य पटनायक कभी भी मौके पर नहीं दिखे। जब पुलिस और वकीलों का झगड़ा हुआ तब भी वो खुद कोर्ट नहीं गए, बल्कि एक ऑफिसर को भेजा जो खुद ही वहां से मुश्किल से जान बचा कर भागी।

इससे पुलिस फोर्स के विश्वास, हिम्मत और ताकत पर बहुत असर पड़ता है। शायद यही कारण है कि आज ऐसा माहौल बन गया है, जहां कोई भी आदमी खुली जगह पर पिस्टल लेकर आता है और गोलियां चलाकर निकल जाता है। पुलिस खड़ी देखती रह जाती है। सब जानते हैं कि 1984 में पुलिस ने दंगे कैसे संभाले। उसके बाद ट्रांजिस्टर बम विस्फोट हुए जिनको भी हमने पकड़ा सजा दिलाई। इसमें दिन रात का नहीं रहता है, घर बार नहीं रहता। लेकिन इस तरह की घटना तो कभी 1984 में भी नहीं हुई थी। लग रहा था कि पुलिस कोई एक्शन लेना ही नहीं चाहती। लोगों ने देखा कैसे एसएन श्रीवास्तव ने आते ही शूट एट साइट का आदेश दे कर स्थिति को संभाला ना। जो लोग 1984 की बात करते हैं, वो जानते होंगे कि पुलिस ने जब जब पूछ कर काम किए हैं, वहां हमेशा गड़बड़ होती है। मेरा मानना है कि पुलिस को अपनी प्लानिंग खुद करनी चाहिए। किसी से पूछने का इंतजार नहीं करना चाहिए क्योंकि पुलिस को अपनी ड्यूटी मालूम होती है। पहले ही बता देना चाहिए कि हिंसा के लिए जीरो टॉलरेंस है, नहीं हो हालात काबू से बाहर हो जाएंगे। कई लोग सोच रहे होंगे कि शायद कल अजित दोभाल के आ जाने से हालात संभल गए पर यह गलत है।

इस सब मामले में एनएसए का क्या रोल है। दिल्ली के मामले तो मुख्यमंत्री और उपराज्यपाल को स्थिति संभालनी होती है। सारे फैसले लेने पड़ते हैं। अब आगे क्या होगा कहना मुश्किल है क्योंकि जो कुछ देश में हो रहा है उसकी कुछ तो वजह होगी। सब जानते हैं कि पूरे देश में सीएए के खिलाफ धरना-प्रदर्शन हो रहे हैं। मेरा सवाल है कि इस बिल को लाने की जरूरत ही क्या थी? जहां तक दूसरे देशों के नागरिकों को पकड़ने की बात है वो तो हम कर ही रहे थे। हमारे पास सिटिजनशिप एक्ट और फॉरेनर एक्ट तो पहले ही थे। जिस तरह यह बिल लाया गया उसका नतीजा हुआ कि पूरे देश में इसके खिलाफ आंदोलन होने लगे। शाहीन बाग जैसे आंदोलन अब देश में 109 जगहों पर हो रहे हैं और इनमें हर धर्म-जाति के लोग भाग ले रहे हैं। जहां तक मेरी व्यक्तिगत राय और समझ है तो यह बिल संविधान के खिलाफ है क्योंकि यह तीन देशों के लोगों को नागरिकता देने में धर्म के आधार पर भेदभाव करता है। मुझे नहीं पता कि न्यायपालिका इस पर क्या फैसला करेगी। कहना मुश्किल है कि दिल्ली के दंगों के बाद अब शाहीन बाग जैसे धरने होंगे या नहीं पर जब तक हम समस्या के मूल में नहीं जाएंगे तब तक हम आगे नहीं बढ़ पाएंगे।

कुछ अखबार दिल्ली के दंगों की तुलना गुजरात के दंगों से करने की बात करते हैं पर मेरे हिसाब से इनका कोई सीधा संबंध नहीं है। ये राजनीतिक बातें हैं जैसे ही दिल्ली की स्थिति सामान्य हो जाएगी लोग इन्हें भूल जाएंगे क्योंकि दिल्ली के हालात और दिल्ली की पुलिस की व्यवस्था एकदम अलग है। यहां पुलिस को हर दबाव को झेलकर भी ड्यूटी निभानी पड़ेगी क्योंकि पूरी दुनिया की नजर दिल्ली पर रहती है। कल के विदेशी अखबारों की मुख्य खबरें ही देखने से पता चलता है कि उन्होंने अमेरिकी राष्ट्रपति ट्रंप की भारत यात्रा की जगह दिल्ली में दंगों को ज्यादा प्राथमिकता दी। लेकिन कहना कि दंगेट्रंप को शमिदा करने के लिए करवाए गए, बड़ी दूर की सोच है क्योंकि सब जानते हैं कि इन दंगों की भूमिका बहुत दिनों से बन रही थी। देखा जाए तो यह उसी दिन शुरू गई थी जिस दिन सीएए संसद से पास हो गया था। जैसा कि मैं कई बार कह चुका हूं, जब तक मैं पुलिस में था, मैं कम्युनिटी पुलिसिंग में विश्वास करता था। आज भी करता हूं। मेरे इलाके में जब भी दो ग्रुप में लड़ाई की नौबत आती थी तो हो ही नहीं सकता कि दोनों दलों में कम-से-कम दो या तीन लोग मुझे जानते ना हों। मैं तो अपने अनुभव के आधार पर कह सकता हूं कि कितनी भी विपरीत स्थिति क्यों ना हो अगर आप किसी को नाम से जानते हो तो आधी समस्या वहीं हल हो जाती है। मैं नहीं जानता कि आज दिल्ली पुलिस में कितने ऑफिसर अपने इलाके में इतनी पकड़ रखते हैं? और मेरे इस सर्किल में नेता भी थे जो आज तक मुझे मानते हैं। दूसरी बात, जो पुलिसवालों को सीख लेनी चाहिए कि कानून की नजर में आप सच की राह पर हैं तो किसी से डरने की जरूरत नहीं है। जब मैं सीबीआई में हवाला कांड की जांच कर रहा था तो उसमें हर पार्टी के नेताओं के नाम आए। मैंने सबके घर जाकर पूछताछ की। चाहे आडवाणी हों या सीताराम केसरी। यह अलग बात है कि जब उस पैसे को ट्रेल करते करते हुए प्रधानमंत्री नरसिम्हा राव तक पहुंच गया तो मेरा ट्रांसफर कर दिया गया। ऐसा मेरे साथ कई बार हुआ लेकिन पुलिस ट्रांसफर के डर से ड्यूटी करनी छोड़ देगी तो समाज कहां पहुँच जाएगा?